International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

जैविक एवं पारिस्थितिक असंतुलन में प्रकृति–मनुष्य के संबंधों का पुनर्विमर्श :

Re-discussion of Nature-man Relationship in Biological and Ecological Imbalance

डॉ वीना उपाध्याय[1], निशान्त उपाध्याय[2]

[1]असि प्रो अर्थशास्त्र विभाग करामत हुसैन महिला पी जी कालेज लखनउ,(उ प्र)
[2]J.R.F.(U.G.C.) शोध छात्र– भूगोल

Abstract:
विज्ञान मनुष्य की सुविधा के लिए है, प्रकृति के विरुद्ध मनुष्य का हथियार नहीं। प्रकृति से संघर्ष और प्रकृति पर अधिकार का दावा, मनुष्य को छोड़ना ही होगा। अन्यथा इस अखिल ब्रह्मांड में पृथ्वी ही एक मात्र ग्रह है जिस पर जैवमंडल है अर्थात जिंदगी की धड़कनें सुनाई देती हैं अन्यत्र कहीं नहीं। किसी भी ग्रह पर जीवन की किसी भी संभावना की तलाश नहीं हो पाई है यदि हम अब भी न संभले समस्त जैव प्रजातियां काल कवलित हो जाएंगी। अतः जीव रक्षा के लिए, मानवता और मानव मात्र की रक्षा के लिए अंततः अपने स्व में अवस्थित होकर अपने स्वस्थ शरीर की रक्षा के लिए, हमें अपने जीवन पद्धति और विकास के पैमानों को बदलना ही होगा।

Keywords: प्रकृति में हस्तक्षेप जैव–विविधता एवं पारिस्थितिकी संतुलन पर संकट।

बहुत पहले महर्षि चार्वाक ने कहा था : चरैवेति–चरैवेति। यानी चलें , सतत चलें। चलने में जीवन है। यह चलना सार्थक है। इसके बड़े गहरे अर्थ हैं। चलना यानी गति की एक मूर्त प्रक्रिया। स्थितप्रज्ञता में भी गति हो सकती है , लेकिन तभी जब एक जगह स्थिर रहकर भी उस वस्तु में स्पंदन हो। इसके विपरीत , एक चलायमान वस्तु भी स्पंदन रहित होने पर जड़ मानी जा सकती है। पेड़ अपनी जगह खड़ा रहता है , किंतु हवा के संग उसकी पत्तियां , उसकी शाखाएं जब हिलती हैं , तो जीवन के मूर्तरूप को दर्शाती हैं। नदी के दोनों छोर या पाट सदियों से एक ही जगह स्थिर होते हैं , लेकिन उसकी हिलकोरती जल धाराएं बताती हैं कि नदी में जीवन के कितने रूप छिपे हैं। अनगिनत जलचर उसमें अपना जीवन तलाश रहे हैं। पृथ्वी को ही देखिये,कहीं से लगता है कि धरती हिलडुल रही है। लेकिन अपनी धुरी पर हमारी पृथ्वी लाखों किलोमीटर की गति से घूम रही है। सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही है। ब्रह्मांड के दूसरे सभी ग्रह और तारे ऐसा ही कर रहे हैं। लेकिन कहीं कोई शोर नहीं। कोई हड़कंप नहीं। तात्पर्य यह है कि जीवन या कोई स्पंदन ऐसा होना चाहिए , जिसके होने का पता नहीं चले। जीवन यह न दर्शाए कि वह फलां–फलां जगह है और उसके होने का प्रमाण यह है कि वहां तूफान उठते हैं। वहां भूचाल आता है। यह जीवन नहीं मृत्यु है। यह सृजन नहीं , विनाश है। गति नहीं , अवगति है। बात गति में जीवन की हो रही है। कहा जाता है कि गति है , तो जीवन है। रुके रहने , थम जाने में , निष्क्रिय बने रहने में जड़ता परिलक्षित होती है। जड़ता यानी मौत। जो एक जगह जड़ हो गया , जीवन की गाड़ी उससे बहुत आगे निकल जाती है। कहते हैं कि जो जड़ है , वह पत्थर है। ऐसा कहने वाले शायद एक पत्थर के जीवन से परिचित नहीं हैं। पत्थर क्या है , लाखों–करोड़ों धूलकणों का समूहबद्ध एक ठोस पिंड। जब कुछ धूलकण पानी में भीगकर सर्वप्रथम एक नन्हा सा पिंड बनते हैं , जो नए जीवन की शुरुआत करते हैं। यह पिंड बहुधा एक ही स्थान पर पड़ा रहता है , लेकिन तमाम अन्य कणों की चादर को अपने ऊपर लपेटता रहता है। धीरे–धीरे इसमें कठोरता आती है। नरम धूलकण पत्थर का रूप लेने लगते हैं। बाद में यही पत्थर बड़ी चट्टानों में बदल जाता है। पत्थरों और चट्टानों में प्रत्यक्षतः कोई गति नहीं होती , लेकिन क्या हम यह नहीं जानते

कि इन्हीं चट्टानों को फैक्ट्रियों में तोड़ कर पीसा जाता है , उन्हें सीमेंट के रूप में ढाला जाता है , जो भवन–निर्माण के लिए आधारभूत सामग्री है। गतिविहीन पत्थरों या चट्टानों में गति नहीं है , लेकिन उनकी सद्गति कितनी प्रेरक है। कौन मनुष्य है , जो पत्थर जैसा जड़ होकर भी ऐसी सद्गति को प्राप्त करने की कोशिश करता दिखाई देता है ? जड़ होकर भी जो चलायमान है , उसके समान गति का हमें अभिलाषी होना चाहिए। प्रकृति के प्रत्येक कण में ऐसी ही गति का नाद छिपा है। पत्थरों में गति है , तभी तो वे हीरे–माणिक बनते हैं। उनकी गति उनके भीतर निहित है। यह अंतर्निहित गति ही सर्वश्रेष्ठ है। ऊपर से मौन और स्थिर , लेकिन भीतर से हमेशा नए संवाद , नए सृजन , नए आविष्कारों को जन्म देने वाला मन ही श्रेयस्कर है। हम गतिमान तो हों , लेकिन गति से दूसरों के जीवन में व्यवधान न पैदा करें। हम चलें जरूर , लेकिन चलते–चलते यह ध्यान रखें कि हमारे चलने की सार्थकता क्या है ? क्या हम सिर्फ इसलिए चल रहे हैं कि हमारे पास दो पांव हैं ? क्या हमारे मन में आवेगों का आलोड़न सिर्फ इसलिए हो रहा है कि मस्तिष्क का काम ही सोचना है ? अगर यह चलना और यह सोचना निरर्थक है , विध्वंसकारी है , तो हमसे श्रेष्ठ तो उस पत्थर का जीवन है , जो सदियों एक ही स्थान पर पड़ा रहता है। कम से कम वह किसी का अहित तो नहीं करता। गत्यात्मकता ऊर्जा देती है। संगीत , ताल , लय पैदा करती है , तो वह स्वयं हमारे लिए , हमारे समाज और अखिल विश्व के लिए हितकर है। ऐसी गति उत्थान , उत्कर्ष और उड़ान की हेतु है। लेकिन जब इस गति में पतन हो , तो वह गति नहीं , अधोगति है। ऐसी गति विनाश की परिचायक है। सकारात्मक उद्देश्य ही गति और जीवन को सार्थक बनाते हैं , प्रत्येक नया कदम उठाते समय हमें इसका ध्यान रखना चाहिए।

लगभग साढ़े चार अरब साल उम्र की यह धरती अब तक पाँच महाविनाश देख चुकी है। इस क्रम में लाखों जीव व वनस्पतियों की प्रजातियाँ नष्ट हुईं। पाँचवाँ जो कहर पृथ्वी पर बरपा था, उसने डायनासोर जैसे महाकाय प्राणी का भी अन्त कर दिया था। अब धरती छठे विनाश के दौर में प्रवेश कर चुकी है। इसका अन्त भयावह होगा। क्योंकि अब धरती पर चिड़िया से लेकर जिराफ तक हजारों जानवरों की प्रजातियों की संख्या कम होती जा रही है। वैज्ञानिकों ने जानवरों की घटती संख्या को वैश्विक महामारी करार देते हुए इसे छठे महाविनाश की हिस्सा बताया है। बीते 5 महाविनाश प्राकृतिक घटना माने जाते रहे हैं, लेकिन वैज्ञानिकों के मुताबिक इस महाविनाश की वजह बड़ी संख्या में जानवरों के भौगोलिक क्षेत्र छिन जाने को बताया है। Stanford University professors Paul R. Ehrich and Rodolfo DiRzo. नाम के जिन दो वैज्ञानिकों ने यह शोध तैयार किया है, उनकी गणना पद्धति वही है, जिसे Union for Conservation of Nature जैसी संस्था अपनाती है। इसकी रिपोर्ट के मुताबिक 41 हजार 415 पशु–पक्षियों और पेड़–पौधों की प्रजातियाँ खतरे में हैं। त्ण् मितपबी ंदक त्वकवसवि क्प्त्व के शोध–पत्र के मुताबिक धरती के 30 प्रतिशत कशेरूकी प्राणी विलुप्तता के कगार पर हैं। इनमें स्तनपायी, पक्षी, सरीसृप और उभयचर प्राणी शामिल हैं। शोध–पत्र की चेतावनी पर गम्भीर बहस और उसे रोकने के उपाय अमल में लाया जाना जरूरी हैं। चूँकि छठा महाविनाश मानव निर्मित बताया जा रहा है, इसलिये हम मानव का प्रकृति में हस्तक्षेप कितना है, इसका भी अध्ययन आवश्यक है। एक समय था जब मनुष्य वन्य पशुओं के भय से गुफाओं और पेड़ों पर आश्रय ढूँढता फिरता था। लेकिन ज्यों–ज्यों मानव प्रगति करता गया प्राणियों का स्वामी बनने की उसकी चाह बढ़ती गई। इस चाहत के चलते पशु असुरक्षित हो गए। वन्य जीव विशेषज्ञों ने जो ताजा आँकड़े प्राप्त किये हैं उनसे संकेत मिलते हैं कि इंसान ने अपने निजी हितों की रक्षा के लिये पिछली तीन शताब्दियों में दुनिया से लगभग 200 जीव–जन्तुओं का अस्तित्व ही मिटा दिया। भारत में वर्तमान में करीब 140 जीव–जन्तु विलोपशील अथवा संकटग्रस्त अवस्था में हैं। ये जैविक विनाश का संकेत नही ंतो और क्या है। 18वीं से 20वीं सदी के बीच प्रत्येक 18 माह में एक वन्य प्राणी की प्रजाति नष्ट हो रही है। एक बार जिस प्राणी की नस्ल पृथ्वी पर समाप्त हो गई तो पुनः उस नस्ल को धरती पर पैदा करना मनुष्य के बस की बात नहीं है। हालांकि वैज्ञानिक क्लोन पद्धति से डायनासोर को धरती पर फिर से अवतरित करने की कोशिशों में जुटे हैं, लेकिन अभी इस प्रयोग में कामयाबी नहीं मिली है। क्लोन पद्धति से भेड़ का निर्माण कर लेने के बाद से वैज्ञानिक इस अहंकार में है कि वह लुप्त हो चुकी प्रजातियों को फिर से अस्तित्व में ले आएँगे। लेकिन इतिहास गवाह है कि मनुष्य कभी प्रकृति से जीत नहीं पाया है। इसलिये मनुष्य यदि अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के

अहंकार से बाहर नहीं निकला तो विनाश या प्रलय से बचना कठिन हो जायेगा। क्यों कि प्रत्येक प्राणी का पारिस्थितिक तंत्र, खाद्य श्रृंखला एवं जैवविविधता की दृष्टि से विशेष महत्त्व होता है। जिसका कभी न्यून मूल्यांकन नहीं करना चाहिए।

भारत में निर्दोष प्राणियों के शिकार की सूची भले ही लम्बी हो उनके संरक्षण की पैरवी अंग्रेजों ने ही की थी। 1907 में पहली बार सर माइकल कीन ने जंगलों को प्राणी अभयारण्य बनाये जाने पर विचार किया, किन्तु सरजॉन हिबेट ने इसे खारिज कर दिया। ईआरस्टेवान्स ने 1916 में कालागढ़ के जंगल को प्राणी अभयारण्य बनाने का विचार रखा। किन्तु कमिश्नर विन्डम के जबरदस्त विरोध के कारण मामला फिर ठंडे बस्ते में बन्द हो गया। 1934 में गवर्नर सर माल्कम हैली ने कालागढ़ के जंगल को कानूनी संरक्षण देते हुए राष्ट्रीय प्राणी उद्यान बनाने की बात कही। हैली ने मेजर जिम कार्बेट से परामर्श करते हुए इसकी सीमाएँ निर्धारित कीं। सन 1935 में यूनाइटेड प्राविंस (वर्तमान उत्तर–प्रदेश एवं उत्तराखण्ड) नेशनल पार्क्स एक्ट पारित हो गया और यह अभयारण्य भारत का पहला राष्ट्रीय वन्य प्राणी उद्यान बना दिया गया। यह हैली के प्रयत्नों से बना था, इसलिये इसका नाम 'हैली नेशनल पार्क' रखा गया। बाद में उत्तर–प्रदेश सरकार ने जिम कार्बेट की याद में इसका नाम 'कार्बेट नेशनल पार्क' रख दिया।

भारत में दुनिया के भू–भाग का 2.4 प्रतिशत भाग है। इसके बावजूद यह सभी ज्ञात प्रजातियों की सात से आठ प्रतिशत प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। इसमें पेड़–पौधों की 45 हजार और जीवों की 91 हजार प्रजातियाँ हैं इस नाते भारत जैवविविधता की दृष्टि से सम्पन्न देश है। हालांकि कुछ दशकों से खेती में रसायनों के बढ़ते प्रयोग ने हमारी कृषि सम्बन्धी जैवविविधता को बड़ी मात्रा में हानि पहुँचाई है। प्रतिदिन 50 से अधिक कृषि प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं। हरित क्रान्ति ने हमारी अनाज से सम्बन्धित जरूरतों की पूर्ति जरूर की, लेकिन रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं के प्रयोग ने एक ओर तो भूमि खराब की, वहीं दूसरी ओर कई अनाज की प्रजातियाँ भी नष्ट कर दीं। अब फसल की उत्पादकता बढ़ाने के बहाने जीएम बीजों का भी खतरा कृषि सम्बन्धी जैवविविधता पर मँडरा रहा है। वर्तमान में जिस गति से वनों की कटाई चल रही है उससे तय है कि 2125 तक जलाऊ लकड़ी की भीषण समस्या पैदा होगी, क्योंकि वर्तमान में प्रतिवर्ष करीब 33 करोड़ टन लकड़ी के ईंधन की जरूरत पड़ती है। देश की सम्पूर्ण ग्रामीण आबादी ईंधन पर निर्भर है। ग्रामीण स्तर पर फिलहाल कोई ठीक विकल्प भी दिखाई नहीं दे रहा है। सरकार ईंधन की समस्या दूर करने के लिये बड़ी संख्या में गोबर गैस संयंत्र लगाने, उज्वला योजना के तहत गैस सिलेंडर देने और प्रत्येक घर में एक विद्युत कनेक्शन की व्यवस्था कर रही है।। ग्रामीणों के पालतू पशु इन्हीं वनों में घास चरते हैं इस कारण प्राणियों के प्रजनन पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

मध्य–प्रदेश एवं छत्तीसगढ़, देश के ऐसे राज्य हैं, जहाँ सबसे अधिक वन और प्राणी संरक्षण स्थल हैं। प्रदेश के वनों का 11 फीसदी से अधिक क्षेत्र उद्यानों और अभयारण्यों के लिये सुरक्षित है। ये वन विंध्य–कैमूर पर्वत के रूप में दमोह से सागर तक, मुरैना में चंबल और कुँवारी नदियों के बीहड़ों से लेकर कूनो नदी के जंगल तक, शिवपुरी का पठारी क्षेत्र, नर्मदा के दक्षिण में पूर्वी सीमा से लेकर पश्चिमी सीमा बस्तर तक फैले हुए हैं। एक ओर तो ये राज्य देश में सबसे ज्यादा वन और प्राणियों को संरक्षण देने का दावा करते हैं, वहीं दूसरी ओर वन संरक्षण अधिनियम 1980 का सबसे ज्यादा उल्लंघन भी इन्हीं राज्यों में हो रहा है। साफ है कि जैवविविधता पर संकट गहराया हुआ है।

प्राकृतिक मनुष्य का जीवन सरल, स्वावलंबी, सुखमय, संतुष्ट, समान और शांत रहा होगा। जीवन की आवश्यकताएं सीमित रही होंगी जिनकी पूर्ति मनुष्य, स्वयं सहज रूप से कर लेता रहा होगा। वह अपने वर्तमान में संतुष्ट और भविष्य के प्रति चिन्तनहींन, प्रकृति की गोद में, स्वच्छन्दतापूर्वक, सुरक्षित और संघर्षहीन जीवन व्यतीत करता रहा होगा। वह खुले आकाश में स्वछन्द विचरण करने वाला आत्म संतुष्ट प्राणी रहा होगा। भूख लगने पर किसी पेड़ से

फल खाकर अपनी क्षुधा को तृप्त करता रहा होगा और किसी जलस्रोत से पानी पीकर प्यास बुझा लेता रहा होगा तात्पर्य यह कि प्रकृति और मनुष्य का सहसम्बन्ध दोनो के लिए पर्याप्त और समभावी रही होगी।

मानव बुद्धि के विकास और प्राकृतिक साधनों के बीच आरम्भ से ही व्युत्क्रम का अनुपात रहा है। 16वीं शताब्दी में विज्ञान के पाले में खड़े होकर मानव ने प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष का शंखनाद किया। मानव मन ने अपनी कल्पना शीलता के दम पर वैज्ञानिक आविष्कारों को जन्म दिया। अनेक मशीनों के आविष्कार ने औद्योगिक क्रांति को संभव बनाया। मशीनीकरण ने निसंदेह मानव जीवन को सुगमता, सुविधा और आराम का पर्याय बना दिया किन्तु इसका एक नकारात्मक पक्ष भी था कि इसने मानव जीवन की आवश्यकताओं को अनन्त तक बढ़ा दिया। अपनी अनन्त आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मशीनों का सहारा लिया गया। फिर शुरू हुआ, प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का अनवरत, अनियंत्रित और अबाध दोहन। यहीं से प्रारंभ हुई होगी आगे निकलने की होड़, एक अंधी दौड़, जिसमे कोई किसी से पीछे नही रहना चाहता होगा। प्रगति की इस अंतहीन चाहत ने प्राकृतिक साधनों के अवैध दोहन की शुरूआत की होगी। विकास की इस चूहा दौड में जंगल कटते चले गए, जबकि जंगल और पर्यावरण का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। दुनिया की मशीनों द्वारा छोड़े गए जहर को पीकर जंगल नीलकण्ठ की भूमिका निभाया करते थे। भारत, इंडोनेशिया और ब्राजील के वन भारी मात्रा में कॉर्बन डाई आक्साइड अवशोषित करते रहे हैं लेकिन इनके निरंतर कटान से इस क्षमता में कमी आयी है। एक तरफ कॉर्बन और ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ा है जबकि हर देश मे इनको अवशोषित करने वाले वन क्षेत्र में लगातार कमी हुई है।

समाज के अभिन्न अंग के रूप में व्यक्ति को स्वयं प्रकृति के संरक्षण की जिम्मेदारी लेनी होगी। किसी दूसरे व्यक्ति, समाज, राज्य या संस्थाओं पर जिम्मेदारी डालने से पूर्व व्यक्ति को स्वयं पहल करनी होगी उसे यह तथ्य अंगीकृत करना होगा कि धरती के संरक्षण के लिए वन संपदा का कोई विकल्प नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम एक वृक्ष के संरक्षण का दायित्व लेना होगा। उसे यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि प्राकृतिक संसाधनों का अक्षय स्रोत मौजूद नहीं है। उन दिनों के लिए भी सोचना होगा जब प्राकृतिक संसाधन मौजूद नहीं होंगे। व्यक्तिगत अभिरुचियों एवं आदतों में परिवर्तन लाना ही होगा।

महा विनाश का आधुनिक स्वरुप कोरोना ने विश्व व्यवस्था में अमीर देश और गरीब देश के विशेषण को गैरजिम्मेदाराना करार दिया है, इसलिए मानवता के संरक्षण के लिए, सभी की चैतन्य जिम्मेदारी बननी चाहिए। अमीर देशों को यह सोचना होगा कि उनके नागरिकों को बटर खाने का हक नहीं यदि गरीब देश की जनता भूखों मर रही हो। आखिरकार हर बढ़ते हुए बाजार में बड़े देश हिस्सेदारी चाहते हैं इन्हें इनकी गरीबी और भूख में भी हिस्सेदारी लेनी होगी। आखिर विकास का अर्थ असंतुलन नहीं होता, विकास का अर्थ तो संगतिपूर्ण और व्यवस्थित प्रणाली से होने वाली परिवर्तनों का एक प्रगतिशील श्रृंखला में संतुलन होना है। विकास एक प्रक्रिया है जिसमें आंतरिक एवं बाह्य परिवर्तन इस प्रकार समेकित किये जाते हैं कि भविष्य में प्राप्त होने वाले नए उद्दीपनों को नियंत्रण करने में मनुष्य सक्षम हो जाता है।

सन्तुलित जीवन शैली, अनुशासन, योग–सहयोग, समर्पण और शान्ति की प्रतिबद्धता से भरी–पूरी भारतीय जीवन पद्धति सदियों से विश्व के लिए प्रेरणा का स्रोत रही है। आधुनिक जीवन शैली जिसमें हर किसी में शीर्ष पर आने की होड़ है। मानव को मशीन समझने की भूल ने अनावश्यक रूप से दबाव व तनाव, अनिद्रा, ईर्ष्या से लेकर रोगग्रस्त जीवन जीने के लिए बाध्य कर दिया है। मानव भौतिक विकास की दौड़ में जल, जंगल, जमीन को प्रदूषित करने के साथ–साथ जीवन में भी नकारात्मकता को खुला प्रवेश दे रहा है। जिसके कारण दुनिया भर के लोग शारीरिक रोगों के साथ–साथ मानसिक असंतुलन और नकारात्मकता से तेजी से ग्रसित हो जाते हैं। आधुनिक शोधों से यह सिद्ध हो रहा है कि भारतीय जीवन पद्धति मन, शरीर, आत्मा से सामाजिकता तक स्वास्थ्य का संतुलन स्थापित करने में सहायता करती है। भारतीय जीवन शैली महर्षि पतंजलि के योग के भौतिक, आध्यात्मिक, मानसिक विकास एवं उन्नति

का प्रेरणा स्रोत रही है। भारतीय योग प्राचीन एवं मध्यकाल की जीवन शैली में भक्ति और शक्ति की यौगिक क्रियाओं का मेल रहा है। आधुनिकता का बाजार पश्चिमी संस्कृति की नकल की होड़ है, जिसने दुनिया को अपने घेरे में ले रखा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का इतिहास योग और सहयोग से रचा–बसा है।

माना जाता है कि स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ्य मस्तिष्क का निर्माण होता है। भारतीय संतुलित जीवन पद्धति के साधन, पूजा–पद्धति, तीज–त्योहार, रीति–रिवाज आदि व्यक्ति को मानसिक एवं शारीरिक शक्ति के साथ तरो ताजा रखने में मदद करते हैं। शारीरिक असंतुलन स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ते हैं, जिसका प्रभाव व्यक्ति की मनोदशा पर पड़ता है और उसका स्वास्थ्य प्रभावित होता है। प्रकृति स्वयं के साथ–साथ हमारी सेहत का भी भरपूर ख्याल रखती है। मानव शरीर में प्राकृतिक रूप से मौजूद एण्टीबॉडीज ज्यादातर बीमारियों का खुद–ब–खुद उपचार कर लेती है। अच्छा पौष्टिक आहार, संतुलित व्यायाम, प्रसन्न चित मन स्वतः ही शरीर के विकास को दूर करने में सक्षम हैं। मौजूदा दौर में ऐसे अनगिनत उदाहरण हमारे बीच उपस्थित हैं, जिनमें लाइलाज बीमारी से बाहर आने के लिए रोगी की प्रबल इच्छा शक्ति कारगर साबित हुई है। जब दुनियाभर के स्पेशलिस्ट अपना काम करके थक चुके होते हैं, तब प्रकृति अपना इलाज आरम्भ करती है।

विकास के मार्ग का चयन तो मुख्यतः विकासशील देशों की समस्या है, परन्तु विकास का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व के पर्यावरण पर पड़ता है, विकासशील तथा अल्पविकसित देशों के औद्योगीकरण के लिए और यहाँ की विशाल जनसंख्या की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन जरूरी हो जाता है, दसूरी ओर विकसित तथा औद्योगीकृत देशों में उपभोग का स्तर इतना ऊँचा है कि वहाँ की अपेक्षाकृत कम जनसंख्या के उपभोग के लिए भी प्राकृतिक संसाधनों का भरपरू दोहन किया जाता है। दोनों स्थितियों विश्व के प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव पडता है और समस्या उत्पन्न होती है। पर्यावरणीय असंतुलन के कारण वैश्विक तापन और पर्यावरण ह्रास के प्रति चिंता बढ़ती ही जा रही है, परन्तु गाँधी जी ने बहुत पहले ही कहा था कि इस धरती के संसाधन सीमित हैं और एक न्याय संगत एवं संपोषित समाज व्यवस्था की स्थापना की आवश्यकता है। गाँधीजी ने मानवीय आवश्यकताओं, मागों और लालच के प्रति अपने विचार प्रकट किए हैं, इसको अपनाकर पर्यावरणीय कार्यक्रम को सफल बनाया जा सकता है।

वर्तमान में रियो–डी–जेनेरियो में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन में घोषित 'एजेण्डा 21' सेक्शन–4, कुछ हद तक पर्यावरण पर गाँधीवादी विचारों को ही प्रदर्शित करता है। गाँधी शाश्वत विचारों के प्रणेता है। गाँधी के विचारों में सत्य एवं सत्य के आचरण की प्रयोगिक उपस्थिति एवं प्रासंगिकता है। गाँधी ने उन विचारों को अंगीकार किया जिनसे केवल व्यक्ति का ही नही प्रत्युति, समष्टि का भी कल्याण संभव होता है। गाँधी के विचारों को राष्ट्र की प्राचीरों की परिधि में समायोजित नहीं किया जा सकता है बल्कि यह सार्वत्रिक विचार है जो वैश्विक दृष्टि की अपेक्षा करते है। अतः गाँधीवाद केवल राजनीतिक विचारधारा तक सीमित दर्शन नहीं है बल्कि इसके विपरीत गाँधी अर्थ, शिक्षा, मनोविज्ञान, समाज, आध्यात्म, दर्शन, भौगोलिक विकास की समग्र फलश्रुति है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विकसित एवं विकासशील देशों ने अपनी भौतिक उपलब्धियों के माध्यम से पर्यावरण के समक्ष गम्भीर चुनौती प्रस्तुत की है। विश्व का पर्यावरण इस प्रकार असंतुलित हुआ है कि मावनीय जीवन धीरे–धीरे संक्रमण की ओर बढ़ रहा है। अलनीनों, लानीनों के प्रभाव ने मौसम चक्र को मानवीय जीवन के प्रतिकूल बना दिया है। विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। कृषि पर जनसंख्या का महत्तम भाग की आजीविका निर्भर करती है। विकासशील देशों के नागरिकों की क्रय शक्ति अपेक्षाकृत कमजोर है। इन देशों में आधारभतू संरचना का विकास नही हो पाया है। पर्यावरण संकट के फलस्वरूप कल्याणकारी बजट का अधिकाधिक भाग स्वास्थ्य आदि मदों में व्यय हो रहा है, जिसके मलू में पर्यावरण की समस्या है। भारत जैसे अधिकाधिक जनसंख्या वाले राज्य में मेट्रोपोलिटन सिटी में गम्भीर पर्यावरणीय संकट उपस्थित हो गया है। यहाँ पर्यावरण के अपदूषण का महत्तम स्तर देखने को मिलता है। पर्यावरण का प्रतिकलू प्रभाव प्रशासन एवं राजनीति पर पड़ता है लेकिन इस सन्दर्भ में यह कहना युक्तिसंगत होगा कि पर्यावरण का प्रश्न

भारतीय राजनीति का मुद्दा नहीं बन पाया है। पर्यावरण के अर्थ एवं सन्दर्भ में प्रशासन को विशेष हस्तक्षेप करना पड रहा है। भारत में नदियों का प्रदूषण, पर्यावरण समस्या का ज्वलतं उदाहरण है। भारत के पहाड़ों का भूस्खलन, भारत के बृहत्तर क्षेत्र में सूखा तो इसके विपरीत किन्हीं–किन्हीं भू–क्षेत्रो में बाढ़ की भयावह विभिषिका, जन जीवन को गहरे रूप में प्रभावित कर रहा है। भारत के राजकोषीय बजट पर पर्यावरण का विशिष्ट प्रभाव पड रहा है। क्योंकि हमारा देश कृषि प्रधान देश है। कल्याणकारी बजट की कटौती करके पर्यावरण को संतुलित करने का प्रयास प्रशासन को करना पडता है। गाँधी एक ऐसे चितंक एवं विचारक हैं, जिनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं अन्य विचारों में प्रकृति के अनुक्रम में जीवन को अवधारित करने का एवं सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने का सामर्थ्य है।

मानव तथा पर्यावरण का आपस में गहरा तथा अटूट संबधं है। मानव ही पर्यावरण को स्वच्छ या प्रदूषित करता है तथा उसका प्रभाव मानव को ही उसी रूप में प्रभावित करता है। मानव समाज के लिए स्वच्छ तथा स्वथयवर्धक पर्यावरण अति आवश्यक है। परन्तु पर्यावरण को स्वच्छ व स्वास्थयवर्धक बनाना मनुष्यो पर ही निर्भर करता है। मानव की क्रियाओ का अनियोजित होना पर्यावरण को उतनी ही अधिक हानि पहुंचाता है। महाननगरो में ट्रको तथा बसों से निकलता काला धुआँ , नदियों में नालो का गन्दा पानी तथा सड़को पर बिखरा कूड़ा –कर्कट आदि महानगरों के पर्यावरण को दूषित करते है। ये सभी क्रिया –कलाप मिल –जल कर हमारे पर्यावरण के सभी घटको जैसे – जल , वायु तथा मृदा के साथ – साथ हमे जीवित रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है। जनसंख्या में लगातार वृद्धि द्वारा पर्यावरण को प्रदूषित करने में मानव की प्रमुख भूमिका है। जनसँख्या के बढ़ने से आवास वस्त्र तथा खाद्य – पदार्थो की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। इन अवश्क्ताओ को पूरा करने के लिए प्रकृतिक सम्पदाओं की हानि होती है जैसे जंगलो को अत्यधिक काटा जाना भूमिगत जल का अनियंत्रित करते है। जब प्राकृतिक साधन पर्यावरण को पुनः स्वछता प्रदान नहीं कर सकते तो प्रदूषण होता है। उद्योगिक दुर्घटनाओं तथा बिना नियोजित लगाय गए कारखानों आदि से भी पर्यावरण के प्रदूषण होता है। अत्यधिक रसयानो का उपयोग भी इसी का एक घटक है। प्राकृतिक संपदाओ का अतिशोषण भी पर्यावरण को बढ़ाव देता है। उद्योगिक क्रांति से वायु तथा जल प्रदूषण होता है। अम्लीय वर्षा अन्तः दहन इंजनों द्वारा प्रचलित वाहनों द्वारा अधिक मात्रा में सल्फर युक्त यौगिक को वायु में मुक्त करने का परिणाम, है। ऐरोसॉल के उपयोग से ओजोन सतह की हानि हो रही है। मानव के विभिन्न क्रिया –कलापो के परिणाम से उतपन अपशिष्ट पदार्थ पर्यावरण को प्रदूषित करने में सबसे आगे है। ये अपशिष्ट पदार्थ अत्यंत घातक होते है तथा इनका प्रभाव दूर –दूर तक फैल जाते है। इनका निपटान आजकल विश्व की समस्या है। इनका पुनःचक्रण ही पर्यावण को दूषित होने से बचा सकता है। पर्यावरण को प्रदूषित करने की भूमिका मनुष्य की है , इसके साथ –साथ इस प्रदूषण पर्यावरण का शिकार भी प्रमुख रूप से मानव ही है। मानव जीवन और प्राकृतिक परिवेश एक दूसरे से घनिष्टता पूर्वक जुड़े है। एक की गड़बड़ी से दूसरा प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। व्यवहार विज्ञानियों ने इन दिनों एक नए आयाम की खोज की है। उनके अनुसार समूचे संसार में फैले मानव समाज की व्यावहारिक गड़बड़ियों का एक महत्वपूर्ण कारण पर्यावरणीय असंतुलन है। इनका मानना है कि अच्छे समाज, अच्छे आदमी के लिए जरूरी है कि प्रकृति सम्पन्न और समृद्ध हो। बात भी सही है। आजकल प्रकृति एवं समाज की पारस्परिक अंतःक्रिया इतनी व्यापक है कि उससे समूची मानव जाति प्रभावित हो रही है। पर्यावरणीय विसंगतियों का कारण औद्योगीकरण, नगरीकरण, ऊर्जा और कच्चे माल के पारम्परिक साधनों की घटोत्तरी, प्राकृतिक असंतुलनों के विघटन, विभिन्न जानवरों व पेड़, पौधों के खाने पीने के साधनों के विनाश को बताया जाता है। स्वच्छन्द वैज्ञानिक प्रगति तथा तकनीकी सामर्थ्य ने मनुष्य को काफी ताकत दे दी है। हम पर्वतों को हटा सकते है। नदियों का मार्ग बदल सकते है। नए सागरों का निर्माण कर सकते है। परन्तु कौन–सी फेर–बदल उचित है, कौन सी अनुचित? क्या करने से सत्परिणाम सामने आयेंगे, क्या करने से दुष्परिणाम? विनाशक प्राकृतिक शक्तियों जैसे भूकम्पों, टाइँनो, चक्रवातों, बाढ़ व सूखा, चुम्बकीय और सौर आधियों से भी संघर्ष करना पड़ेगा। परन्तु यह केवल उन नियमों के अनुसार ही किया जा सकता है जिनके द्वारा जैव मण्डल एक अखण्ड व स्वनियामक प्रणाली के रूप में काम करता तथा विकसित होता है। आज का पर्यावरणीय सवाल महज प्रदूषण तथा मनुष्य के आर्थिक क्रियाकलापों के दूसरे नकारात्मक परिणामों तक सीमित नहीं है। यह हमारी जीवन शैली को गढ़ने

से भी सम्बन्धित हैं। इसे बिना सोचे–विचारे अन्धाधुन्ध भौतिक विकास ही आज धरती के अस्तिव पर खतरा पैदा कर दिया है।

सन्दर्भ सूचीः

1ण अल्तेकर, डॉ. अनंत सदाशिव. (1979–80). प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धती. (संशोधित संस्करण). वाराणसीः नंदकिशोर एंड ब्रदर्स.

2ण धर उपेन्द्र, जैव विविधता संरक्षण विकास, गो.ब. पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान कोसी कटारमल अलमोड़ा, उत्तराखण्ड ।

3ण डॉ. प्रसाद अनिरूद्ध, पर्यावरण संरक्षण विधि की रूप रेखा, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

4ण चन्दोला, प्रेमानन्दः पर्यावरण और जीव (2011),

5ण सिंह, डॉ. पी. एन.: पारिस्थितिकी परिचय, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

6ण https://climate.nasa.gov/resources/global-warming-8. vs-climate-change

7ण डॉ. राव बी.पी. पर्यावरण अध्ययन के आधार (2005) वसुन्दरा प्रकाशन गोरखपुर।